इस आलेख में उन मुख्य विषयों पर बात करने का प्रयास किया गया है, जिन पर हाल के वर्षों में भारत के उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने चर्चा की है। उसने बाबा आदम के जमाने के ऐसे कानूनों की पड़ताल करने में बहुत सकारात्मक भूमिका निभाई है, जिनमें से कई भारतीय दंड संहिता, 1860 में शामिल हैं। इनमें बलात्कार के मामलों से संबंधित धारा 376, अप्राकृतिक यौनाचार तथा समलैंगिक संबंधों में लागू होने वाली धारा 377 और व्यभिचार से संबंधित धारा 497 शामिल हैं

महिला सशक्तीकरण: कानूनी प्रावधान

गीता लूथरा

महिलाओं को बिना किसी रोकटोक के अपने फैसले स्वयं लेने के लिए सशक्त बनाना और उन्हें पुरुषों के बराबर मानना राष्ट्र की सर्वांगीण प्रगति के लिए अनिवार्य है। हमारा संविधान समानता के अधिकार की तथा लैंगिक आधार पर भेदभाव का शिकार नहीं होने के अधिकार की गारंटी देता है। लेकिन भारतीय समाज में लैंगिक अर्थात स्त्री-पुरुष भेदभाव प्राचीन काल से ही चला आ रहा है।

इस आलेख में उन मुख्य विषयों पर बात करने का प्रयास किया गया है, जिन पर हाल के वर्षों में भारत के उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने चर्चा की है। उसने बाबा आदम के जमाने के ऐसे कानूनों की पड़ताल करने में बहुत सकारात्मक भूमिका निभाई है, जिनमें से कई भारतीय दंड संहिता, 1860 में शामिल हैं। इनमें बलात्कार के मामलों से संबंधित धारा 376, अप्राकृतिक यौनाचार तथा समलैंगिक संबंधों में लागू होने वाली धारा 377 और व्यभिचार से संबंधित धारा 497 शामिल हैं। इन फैसलों और चर्चाओं का विवरण इस समय प्रासंगिक है।

धारा 497 के तहत ऐसे किसी भी पुरुष को दंडित किया जाता है, जो किसी अन्य पुरुष की सहमति के बगैर उसकी पत्नी के साथ अवैध संबंध रखता है। यह स्त्रियों के साथ बहुत पक्षपात करने वाला प्रावधान है और संविधान के अनुच्छेद 14 तथा 15 का उल्लंघन भी करता है। पहले तो उसमें महिला को उसके पति की संपत्ति की तरह माना जाता है। यदि ऐसा काम पति की 'सहमति अथवा मिलीभगत से किया जाए तो उसे अपराध नहीं माना जाएगा। दूसरी बात, अपराध उस पुरुष का माना जाता है, जिसके किसी अन्य पुरुष की पत्नी के साथ अवैध संबंध हैं। लेकिन स्त्री ने पहल की हो तो भी उसे दंड नहीं दिया जाता, क्योंकि उसे पीड़ित माना जाता है। तीसरी बात, यदि पुरुष के विवाहेत्तर संबंध होते हैं तो न तो उस पर और न ही उस महिला पर मुकदमा चलाया जा सकता है, जिसके साथ उसके ऐसे संबंध हैं। यह कानून 1860 में मैकॉले ने तैयार किया था और उसके बाद से बिना किसी प्रगतिशील संशोधन के यह चलता ही आ रहा है। 1971 में आई 42वीं

लेखिका भारत सरकार की वरिष्ठ विशेष परामर्शदाता रही हैं और उन्हें सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्ट में 35 साल वकालत का लंबा अनुभव रहा है। वे अंतरराष्ट्रीय कानून और वाणिज्यिक मध्यस्थता, संवैधानिक कानून आदि की विशेषज्ञ हैं। ईमेल : geetaluthra@gmail.com

विधि रिपोर्ट और 2003 की मालीमठ समिति की रिपोर्ट में इस परिभाषा को बदलने तथा स्त्री और पुरुष दोनों के साथ समान बर्ताव करने की सिफारिश की गई थी, लेकिन उन्हें लागू नहीं किया गया है। इतना ही नहीं, वर्ष दर वर्ष विभिन्न फैसलों में अदालतों ने इसे संवैधानिक रूप से वैध ठहराया है। यह बात हाल ही में जोसेफ शाइन बनाम भारत सरकार मामले में प्रकाश में आई, जिसमें इस प्रावधान की संवैधानिक वैधता को चुनौती देने वाली एक याचिका उच्चतम न्यायालय में दाखिल की गई। पीठ ने कहा कि इस प्रावधान में लैंगिक निष्पक्षता का सिद्धांत नहीं है और जब पति की सहमति या मिलीभगत पर जोर दिया जाता है तो महिला की व्यक्तिगत पहचान को ठेस लगती है। उसने कहा कि अब समाज के लिए यह महसूस करने का समय आ गया है कि महिला हर क्षेत्र में पुरुष के बराबर है और इस आधार पर यह प्रावधान पुराना और दकियानूसी लगता है। लेकिन भारत में विवाह की नैतिक पवित्रता पर जोर देते हुए केंद्र का रुख यही रहा है कि धारा 497 विवाह की संस्था का समर्थन और सुरक्षा करती है तथा यदि उसे खत्म कर दिया गया तो भारत की उस मूलभूत भावना को आघात पहुंचेगा, जो विवाह की संस्था को सबसे ज्यादा महत्व देती है। यह अजीब बात है कि हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के अंतर्गत व्यभिचार ही शादी तोड़ने का इकलौता आधार है और उसे दंडनीय अपराध माना गया है। इस स्त्री-पुरुष निरपेक्ष बनाने के प्रश्न पर विचार करने से पहले यह सोचना चाहिए कि उसे दंडनीय अपराध बनाने की जरूरत है भी या नहीं? या क्या यही शादी खत्म करने का इकलौता आधार होना चाहिए?

तीन तलाक मुद्दा

उच्चतम न्यायालय के सामने एक साथ तीन तलाक देने के कथित प्रावधान का मामला भी आया। अदालत के सामने सवाल यह था कि यह वाकई में मुस्लिम पर्सनल लॉ का हिस्सा है या नहीं। एक साथ तीन तलाक सुन्नी मुसलमानों, विशेष तौर पर हनफी समुदाय के बीच बहुत पहले से चली आ रही प्रथा है, जिसमें कोई भी मुस्लिम पुरुष एक ही बार में तीन बार 'तलाक' शब्द बोलकर अपनी पत्नी को एकतरफा तलाक दे सकता है और उसे बदला भी नहीं जा सकता। पिछले तमाम वर्षों में मुस्लिम पुरुषों ने मुस्लिम महिलाओं को नुकसान पहुंचाने के लिए इस प्रावधान का दुरुपयोग किया, जिसमें किसी पति ने टेक्स्ट मैसेज के जरिये या फोन पर ही अपनी पत्नी को तलाक दे दिया। इससे पहले किसी दबाव में अथवा मजाक में दिया गया तलाक भी मान्य और प्रभावी ठहराया गया (रशीद अहमद बनाम अनीसा खातून - एआईआर 1932 पीसी 25)। वैध तलाक के लिए केवल एक ही शर्त जरूरी थी - पति वयस्क हो और तलाक देते समय उसकी मानसिक हालत सही हो। यह बात पत्नी को बताने की जरूरत भी नहीं थी और जैसे ही यह बात उसे पता चलती थी, तलाक लागू हो जाता था (पथायी बनाम मोइदीन - 1968 केएलटी 763)।

संपत्ति का अधिकार और महिला का संपत्ति रखने का अधिकार भी अदालतों, न्यायिक फैसलों, संशोधनों तथा कानूनों की व्याख्या का विषय रहा है। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 में हुए संशोधन ने महिलाओं को माता-पिता और ससुराल दोनों की ही संयुक्त परिवार की संपत्तियों में हिस्सेदारी का अधिकार दिया। उससे पहले महिलाओं का सीमित संपत्ति पर अधिकार होता था

लेकिन हिना एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2017 (1) आरसीआर - दीवानी) मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कहा था कि किसी जायज कारण के बिना और दोनों पक्षों के बीच सुलह की कोशिश किए बगैर ही दिया गया तलाक कानूनी रूप से मान्य नहीं होगा। शमीम आरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (एआईआर 2002 एससी 3551) मामले में उच्चतम न्यायालय ने भी यही कहा। इस प्रकार तीन तलाक में भी सोच-विचार की और आत्मविश्लेषण की गुंजाइश खत्म नहीं होती। पाकिस्तान समेत कई मुस्लिम बहुल देशों ने यह प्रथा समाप्त कर दी है। भारत में 2017 में एक साथ तीन तलाक की संवैधानिक वैधता शायरा बानो बनाम भारत सरकार एवं अन्य (2017-9 एससीसी 1) मामले में उच्चतम न्यायालय के सामने आया। इसे 3:2 के बहुमत से असंवैधानिक, पक्षपाती और अनुच्छेद 14 के विरुद्ध ठहराया गया। लेकिन यह प्रश्न अब भी बाकी है कि क्या एक साथ तीन तलाक को असंवैधानिक ठहराए जाने से भारत में स्त्री-पुरुष समानता की तस्वीर बदल गई है? तलाक के दूसरे तरीके अब भी मौजूद हैं, जिनमें मुस्लिम पुरुषों के पास कानून का सहारा लिए बगैर ही तलाक देने का अधिकार अब भी है। दिसंबर, 2017 में मुस्लिम महिला (विवाह में अधिकार संरक्षण) विधेयक, 2017 को लोकसभा में प्रस्तुत किया गया, जिसमें एक साथ तीन तलाक को संज्ञेय और गैर जमानती अपराध मानने की बात कही गई है। इसे लोकसभा ने पारित कर दिया, लेकिन राज्यसभा में यह अभी तक लंबित है। विधेयक को उसके मौजूदा रूप में त्रुटिरहित नहीं कहा जा सकता। क्या इसे मुस्लिम पुरुषों के लिए संज्ञेय अपराध बनाना उचित है? भारतीय दंड संहिता, 1980 के अंतर्गत विवाह से जुड़े ऐसे अपराधों को, जिनमें पत्नी को शारीरिक नुकसान नहीं पहुंचाया गया हो, असंज्ञेय करार दिया जाता है ताकि पीड़ित पक्ष के कहने पर ही मुकदमा चलाया जा सके। लेकिन एक साथ तीन तलाक को संज्ञेय बनाने का आशय यह है कि मुस्लिम पुरुष पर मुकदमा चलाया जा सकता है चाहे उसकी पत्नी उस पर मुकदमा करना नहीं चाहती है। मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा देने के प्रयास में यह विधेयक अनजाने में मुस्लिम पुरुषों के अधिकारों को ठेस पहुंचा सकता है और उनके साथ भेदभाव कर सकता है।

संपत्ति का अधिकार

संपत्ति का अधिकार और महिला का संपत्ति रखने का अधिकार भी अदालतों, न्यायिक फैसलों, संशोधनों तथा कानूनों की व्याख्या का विषय रहा है। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 में हुए संशोधन ने महिलाओं को माता-पिता और ससुराल दोनों की ही संयुक्त परिवार की संपत्तियों में हिस्सेदारी का अधिकार दिया। उससे पहले महिलाओं का सीमित संपत्ति पर अधिकार होता था। कई जनजातीय कानूनों तथा धार्मिक कानूनों के अंतर्गत महिलाओं को समुदाय से बाहर विवाह करने पर पैदाइशी तथा उनकी अपनी संपत्ति पर अधिकार से वंचित कर दिया जाता है। छोटा नागपुर काश्तकारी अधिनियम, 1908 के अनुसार समुदाय से बाहर विवाह करने वाली महिलाओं को 'पैतृक संपत्ति पर अधिकार से वंचित मान लिया जाता था।

धार्मिक पहचान

पारसी कानूनों में भी ऐसा ही है, जहां माना जाता है कि समुदाय से बाहर विवाह करने वाली पारसी महिलाओं की धार्मिक पहचान समाप्त हो जाती है। समुदाय से बाहर विवाह करने वाले पारसी पुरुष की संतानें तो पारसी हो सकती हैं, लेकिन समुदाय से बाहर विवाह करने वाली पारसी स्त्री की संतानें पारसी नहीं हो सकतीं। समुदाय से बाहर विवाह करने वाली पारसी स्त्री को दखमा (टावर ऑफ साइलेंस) में नहीं जाने दिया जाता और अपने माता-पिता के अंतिम संस्कार में हिस्सा नहीं लेने दिया जाता। एक पारसी महिला गुलरुख गुप्ता ने इसे गुजरात उच्च न्यायालय में चुनौती दी और अदालत ने पारसी महिला को धार्मिक कार्य करने से रोकने के निर्णय को यह कहते हुए सही ठहराया कि ईसाई धर्म हो या पारसी या यहूदी धर्म हो, सभी धर्मों में महिला की धार्मिक पहचान उसके पति की धार्मिक पहचान में मिल जाएगी। जब इस फैसले को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई तो पारसी ट्रस्ट ने अपनी सदियों पुरानी परंपरा तोड़ दी और कहा कि वह उन्हें उनके माता-पिता के अंतिम संस्कार में हिस्सा लेने के लिए दखमा में आने देगा। समुदाय से बाहर विवाह करने वाली पारसी महिलाएं अपनी धार्मिक पहचान खो देती हैं या नहीं, इस प्रश्न पर चर्चा करते हुए अदालत ने कहा कि जब समुदाय से बाहर विवाह करने वाले पुरुष को अपनी धार्मिक पहचान बरकरार रहने की इजाजत है तो किसी महिला को उससे वंचित कैसे किया जा सकता है? क्या ऐसा कहा जा सकता है कि कोई महिला किसी पुरुष से विवाह करके खुद को उसके पास गिरवी रख देती है और धार्मिक पहचान समेत अपनी पूरी पहचान खो देती है?

परिभाषा में संशोधन

चूंकि भारत में बलात्कार की घटनाएं बहुत बढ़ गई हैं, इसलिए अदालतों और विधायिका ने विभिन्न संशोधन किए हैं। 2013 के पहले भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 375 के अंतर्गत 'बलात्कार की परिभाषा बहुत संकीर्ण थी और केवल यौन संबंध ही इसके दायरे में आते थे। कुख्यात निर्भया सामूहिक बलात्कार कांड के बाद आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2013 (बलात्कार रोधी विधेयक) पारित हो गया, जिसके अंतर्गत परिभाषा को विस्तार दिया गया और गुप्तांग में शरीर का कोई अंग प्रविष्ट कराने, कोई वस्तु प्रविष्ट कराने आदि को इसमें शामिल कर लिया गया। उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में आरोपित छह में से चार व्यक्तियों के मृत्युदंड को 2018 में बरकरार रखा। एक आरोपित अवयस्क था और सबसे क्रूर होने के बाद भी उसे तीन वर्ष बाद केवल इसीलिए छोड़ दिया गया क्योंकि उसकी उम्र 18 वर्ष से कुछ महीने कम थी। इस घटना के बाद किशोर न्याय (बाल देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 पारित किया गया, जिसमें कहा गया कि जघन्य अपराध (सात वर्ष अथवा अधिक समय के कारावास योग्य अपराध) करने वाले 16 वर्ष अथवा अधिक उम्र के लोगों पर वयस्कों के समान मुकदमे चलाए जाएंगे। कठुआ सामूहिक बलात्कार कांड के बाद आपराधिक कानून (संशोधन) अध्यादेश, 2018 को राष्ट्रपति की मंजूरी मिल गई, जिसके तहत बलात्कार, विशेष रूप से 16 वर्ष से कम उम्र की बच्ची के साथ बलात्कार के मामले में दंड बढ़ा दिया गया। हालांकि अजीब बात है कि संशोधन के बाद भी बलात्कार की परिभाषा में 'वैवाहिक बलात्कार' को तब तक बलात्कार नहीं माना जाता है, जब तक पत्नी की उम्र 15 वर्ष से कम नहीं हो। इसे अपराध करार दिए जाने के विरुद्ध तर्क यह दिया जाता है कि इससे हमारे समाज में विवाह की संस्था कमजोर होगी।

समान नागरिक संहिता

भारतीय संविधान की प्रस्तावना कहती है कि 'हम भारत के लोग भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर...? पंथनिरपेक्षता का अर्थ है राज्य द्वारा सभी धर्मों के साथ एकसमान व्यवहार किया जाना। सभी नागरिकों के धर्म पर विचार किए बगैर उनके निजी मामलों पर नियंत्रण करने वाली समान नागरिक संहिता ही सच्ची पंथनिरपेक्षता की धुरी है। ऐसी संहिता की आवश्यकता है क्योंकि भारत में प्रचलित विभिन्न पर्सनल लॉ महिलाओं के साथ भेदभाव करते हैं और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने की दिशा में अभी उन्हें लंबा सफर तय करना है। अनुच्छेद 14 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति पर पर्सनल लॉ के अलावा एक समान फौजदारी और दीवानी कानून लागू होते हैं। अपने मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए अदालतों के दरवाजे खटखटाने वाली महिलाओं की संख्या बढ़ने के कारण विधि आयोग से भारत में समान नागरिक संहिता लागू करने की संभावना खंगालने के लिए कहा गया है, जहां पर्सनल लॉ के मामले में पुरुषों और महिलाओं को एक समान माना जाएगा। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 (राज्य के नीति निर्देशक तत्व) में समान नागरिक संहिता के प्रावधान की बात है। इसमें कहा गया है कि 'राज्य भारत की सीमाओं के भीतर नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता लागू करने का प्रयास करेगा।' उच्चतम न्यायालय ने मोहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम एवं अन्य (एआईआर 1985 एससी 945) मामले में कहा है कि यह अफसोस की बात है कि हमारे संविधान का अनुच्छेद 44 नाममात्र का ही है। इस मामले में स्वयं ही पहल और बदलाव करने का जोखिम शायद कोई भी समुदाय नहीं उठाएगा। इसीलिए देश के नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता लागू करने का जिम्मा राज्य का है और निश्चित रूप से उसके पास ऐसा करने की विधायी क्षमता है। अगर संविधान को सार्थक बनाए रखना है तो कठिनाइयां होने के बाद भी शुरुआत करनी ही होगी। उच्चतम न्यायालय ने सरला मुद्गल बनाम भारत सरकार (1995 - एससीसी 3 635) मामले में एक बार फिर समान नागरिक संहिता की जरूरत पर बात की। लेकिन ऐसी समान नागरिक संहिता में कम मुश्किलें नहीं हैं, विशेषकर भारत जैसे देश में, जहां विभिन्न धर्मों, जातियों आदि में अत्यधिक सांस्कृतिक विविधता है। इसे धार्मिक स्वतंत्रता के सुनिश्चित अधिकार का अतिक्रमण माना जा सकता है। ऐसा फैसला चाहे कितना भी प्रगतिशील क्यों न हो, उसे लोगों पर तब तक थोपा नहीं जा सकता, जब तक वे इसे स्वीकार नहीं करते।

इस प्रकार पिछले कई वर्षों से भारत में सुधार की आवश्यकता महसूस की गई है और भारत का उच्चतम न्यायालय पुराने तथा अप्रासंगिक कानूनों को नया रूप देने में रचनात्मक भूमिका निभाता आया है। फिर भी महिलाओं को समाज में बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए हमें अभी लंबा रास्ता तय करना है। ❑